37

सांविधानिक विकास में सीमा-चिह्न

(1909, 1919, 1935 तथा 1947)

37.1 भूमिका

पहले के दो अध्यायों में आपने देखा कि भारत की अर्थव्यवस्था पर उपनिवेशवाद का प्रभाव इतना बुरा पड़ा कि उसने हमारी ग्रामीण आत्मनिर्भरता और वस्त्र उद्योग तथा हस्तकला उद्योग को नष्ट कर दिया। उपनिवेशवाद साम्राज्यवाद में बदल गया और भारतीयों ने उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद की प्रतिक्रिया के रूप में ब्रिटिश शासन के खिलाफ अपनी आवाज उठाई तथा स्वाधीनता प्राप्ति तक अपने स्वाधीनता संघर्ष की लड़ाई लड़ी। ब्रिटिश पराधीनता से भारत की आजादी का मार्ग राष्ट्रीय आंदोलन की अनेक मांगों तथा ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा दी गई रियायतों का परिणाम था। 1858 में ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथ से ब्रिटिश क्राउन को सत्ता के हस्तांतरण तथा 1858 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के बाद से ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत के लिए अधिनियमों की श्रृंखला पास की गई। 1892 का भारतीय परिषद अधिनियम 1861 के भारतीय परिषद अधिनियम से कुछ मात्रा में बेहतर साबित हुआ। 1892 के एक्ट ने केंद्रीय विधायिका में अतिरिक्त सदस्यों की संख्या 12 से बढ़ाकर 16 कर दी तथा प्रांतीय विधानमंडलों की संख्या 8 से बढ़ाकर कर 20 कर दी। 1892 के अधिनियम ने केंद्रीय तथा प्रांतीय विधान मंडलों के सदस्यों को यह अधिकार दिया कि वे वार्षिक बजट पर बहस कर सकें। वे कुछ नियम और कानूनों के तहत कुछ निश्चित प्रश्न भी पूछ सकते थे। 1909, 1919 तथा 1935 के परवर्ती अधिनियम अतिरिक्त सदस्यों की संख्या में वृद्धि करने तथा विधानमंडलों की शक्ति बढ़ाने के उद्देश्य से पास किए गए। 1885 से 1947 के पूरे काल तक भारत में राष्ट्रवादी आंदोलन में सुधार (1885) से स्वराज (1906) और स्वराज से पूर्ण स्वराज (1929) की मांगों के माध्यम से सरकार पर अपना दबाव बढ़ाना जारी रखा। इससे अंततः 15 अगस्त 1947 को स्वाधीनता की

प्राप्ति में सहायता मिली, जो कि देश को दो अधिराज्यों—भारत और पाकिस्तान—में विभाजित करने की कीमत पर थी।

भारत में सांविधानिक विकास ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत के लिए बड़ी संख्या में पास किए गए अधिनियमों के माध्यम से परिलक्षित होता है; विशेषतः भारतीय परिषद अधिनियम 1909, भारत शासन अधिनियम 1919,1935 और भारतीय स्वाधीनता अधिनियम 1947।

37.2 उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के बाद आप

- 1909 के भारतीय परिषद अधिनियम के प्रावधानों की विशेषताएं बता सकेंगे।
- सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व के विकास का विश्लेषण कर सकेंगे।
- 1919 के भारत शासन अधिनियम के प्रावधानों का परिचय दे सकेंगे।
- 1919 के अधिनियम द्वारा प्रस्तावित द्वैधतंत्र की कमियों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- 1935 के अधिनियम भारत शासन अधिनियम की मुख्य विशेषताएँ बता सकेंगे।
- 1935 के अधिनियम तहत प्रस्तावित 'परिसंघ' तथा प्रांतीय स्वायत्तता के प्रावधानों का मूल्यांकन कर सकेंगे।
- 1947 के भारतीय स्वाधीनता अधिनियम की विशेषताओं का परिचय तथा उनका महत्त्व बता सकेंगे।

37.3 भारतीय परिषद अधिनियम-1909

भारत-परिषद अधिनियम-1909 जिसे मार्ले-मिंटो सुधार के नाम से जाना गया, 1892 के भारत परिषद अधिनियम के बाद एक निश्चित प्रगति का संकेत था। इस 1909 के ऐक्ट ने देश में विधायी संस्थाओं की सदस्यता तथा शक्ति बढ़ाने के लिए भारतीयों की मांग को पूर्ण किया।

1909 का भारत परिषद अधिनियम अनेक कारकों का परिणाम था। कांग्रेस की उदार नीतियों (1885-1905) की प्रतिक्रियास्वरूप उग्रवाद में वृद्धि तथा लार्ड कर्जन की तानाशाही और लोगों की बिगड़ती अर्थिक स्थिति ने अंग्रेजों के खिलाफ घृणा की भावना पैदा कर दी। भारतीयों की नाराजगी कांग्रेस की मात्र सुधारों के स्थान पर स्वराज की मांग (1906) में स्पष्ट देखी जा सकती है। भारतीयों की बढ़ती राष्ट्रवादी और देशभक्ति की भावनाओं को देखते हुए अंग्रेजों ने 'फूट डालो और राज करो' की नीति लागू की। आगा खां के नेतृत्व वाले मुस्लिम प्रतिनिधि मंडल की पृथक् प्रतिनिधित्व की मांग पर 1906 शिमला में सहानुभूतिपूर्वक विचार किया गया। 1906 में मुस्लिम लीग के जन्म से यह सिद्ध हो गया कि ब्रिटिश नीतियां भारतीयों में फूट के बीज डालने के लिए थीं। 1909 का भारत परिषद अधिनियम तत्कालीन भारत की परिस्थिति का परिणाम था।

भारतीय परिषद अधिनियम, 1909 के प्रमुख प्रावधान संक्षेप में इस प्रकार हैं :

1. केंद्रीय विधायी परिषद का आधार बढ़ा दिया गया। इसमें कुल 69 सदस्य थे जिनमें गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद के 9 सदस्य भी शामिल थे। शेष 60 अतिरिक्त सदस्यों

में से 28 सरकारी नामांकित सदस्य होते थे, जबकि 32 गैर सरकारी निर्वाचित सदस्य। इन 32 गैर सरकारी सदस्यों में से 27 का निर्वाचन तथा 5 का नामांकन होता था। 27 निर्वाचित सदस्यों में से 13 सामान्य निर्वाचकों द्वारा चुने जाते थे, 12 वर्गगत निर्वाचकों तथा 2 विशेष निर्वाचकों द्वारा चुने जाते थे। वर्ग आधारित निर्वाचकों द्वारा चुने गए 12 सदस्यों में से 6 भूस्वामी तथा 6 मुसलमानों में से लिए जाते थे।

रेखाचित्र 1 से केंद्रीय विधायी परिषद के गठन का परिचय मिलता है :

रेखाचित्र : 1

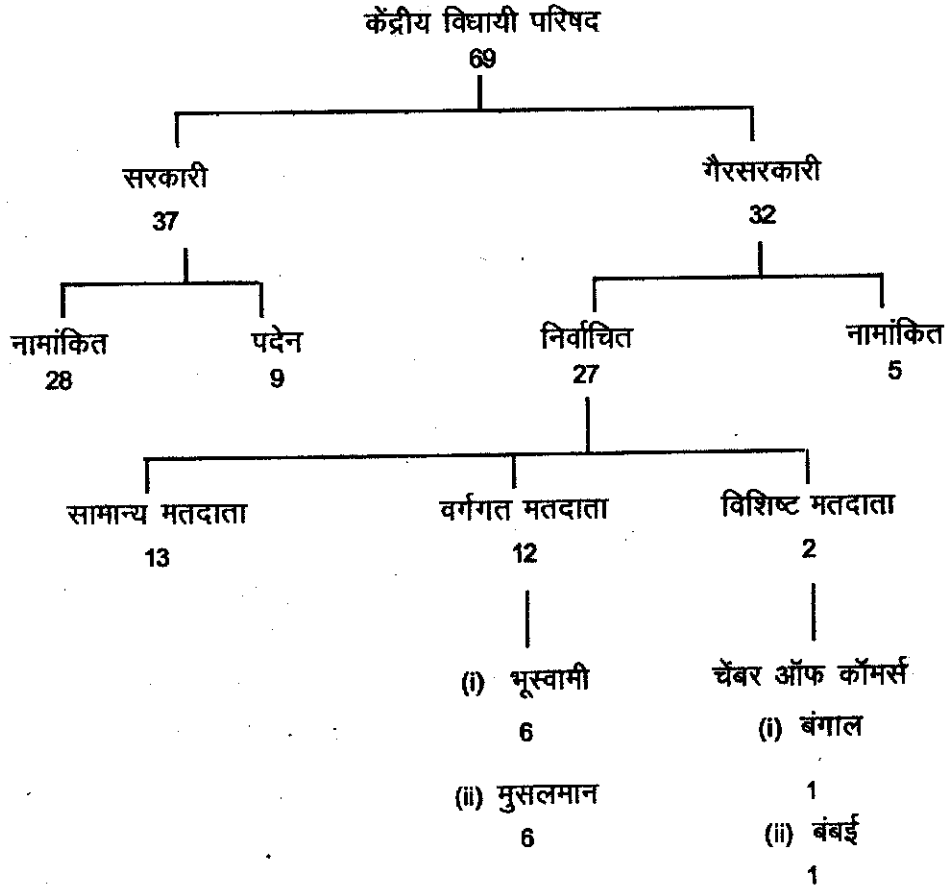

2. प्रांतीय विधायी परिषदों में भी विस्तार किया गया। इस अधिनियम द्वारा निर्धारित वास्तविक संख्या निम्न है :

प्रांतीय विधायिकाओं में सदस्यों की संख्या

बंगाल विधायी परिषद	:	52
मद्रास विधायी परिषद	:	47
बंबई विधायी परिषद	:	47
यू.पी. विधायी परिषद	:	47

पूर्वी बंगाल तथा असम विधायी परिषद	:	41
पंजाब विधायी परिषद	:	25
बर्मा विधायी परिषद	:	16

केंद्रीय विधायी परिषद के सदस्यों की तरह प्रांतीय विधायी परिषद के सदस्य भी सरकारी और गैरसरकारी में विभक्त थे। गैरसरकारी नामांकित और निर्वाचित में तथा निर्वाचित सदस्य सामान्य, वर्गगत तथा विशिष्ट मतदाताओं में विभाजित थे।

3. 1909 के अधिनियम द्वारा प्रस्तावित मताधिकार सीमित तथा विभेदपूर्ण था ।
4. 1909 के अधिनियम ने कार्यकारिणी परिषद में भारतीयों की नियुक्ति संभव बनाई।
5. अधिनियम, 1909 द्वारा प्रस्तावित मताधिकार सीमित तथा विभेदकारी था।
6. 1909 के अधिनियम ने कार्यकारिणी परिषद में भारतीयों की नियुक्ति का प्रावधान किया।

यद्यपि 1909 का अधिनियम 1892 के भारत परिषद अधिनियम की तुलना में कुछ बेहतर था। परंतु उससे भारतीय, विशेषकर क्रांतिकारी संतुष्ट नहीं हुए। विधायी परिषदों के आकार तथा शक्तियों में वृद्धि बहुत देर में तथा बहुत कम मात्रा में हुई। इसके अलावा 1909 का एक्ट देश में उत्तरदायी सरकार के लिए कांग्रेस की 'स्वराज' की मांग से काफी दूर था। संकीर्ण, प्रतिबंधित तथा विभेदकारी मताधिकार भारतीयों में कोई उत्साह नहीं जगा पाया। इस अधिनियम से एक नौकरशाही राज्य का निर्माण हुआ, जिसमें विधायिकाओं में सरकारी अधिकारियों का बहुमत था। अतः 1909 के अधिनियम ने लोगों को सुधार की छायामात्र उपलब्ध कराई।

1909 के अधिनियम की सबसे बड़ी कमी धर्म के आधार पर पृथक् निर्वाचक मंडल की शुरुआत थी। इस अधिनियम ने भारत के लोगों को हिंदू और मुसलमानों में बांटना चाहा, जिसका आधार धर्म को बनाया। इसके परिणामस्वरूप अन्य समुदायों ने भी पृथक् निर्वाचक मंडल की मांग की। 1909 के अधिनियम ने उस कार्य की शुरुआत कर दी, जो कि 1947 में सांप्रदायिक आधारों पर देश के विभाजन के साथ संपन्न हुआ, अर्थात् भारत और पाकिस्तान के रूप में। इस अधिनियम ने ऐसे बीज बोए जिसका फल बहुत ही कड़वा रहा।

पाठगत प्रश्न 37.1

कोष्ठक में दिए गए शब्दों में से उपयुक्त शब्द चुनकर खाली स्थान भरिए :

1. कांग्रेस ने शुरुआती समय (1885-1905) में मांग की ——————की।
(स्वराज, सुधार, पूर्ण स्वराज)
2. अखिल भारतीय मुस्लिम लीग बनी ——————में। (1905, 1906,1907)
3. 1906 में मुस्लिम प्रतिनिधि मंडल शिमला में——————के नेतृत्व में मिला।
(आगा खां, जिन्ना, लियाकत अली)

4. 1909 के अधिनियम में केंद्रीय विधायिका कौंसिल में अतिरिक्त सदस्यों की संख्या तय थी ——————। (50, 60, 70)

5. पृथक् निर्वाचक मंडल की शुरुआत सन्——————के भारत परिषद अधिनियम में हुई। (1861, 1892, 1909)

37.4 भारत शासन अधिनियम, 1919

1909 का भारत परिषद अधिनियम 1906 से ही की जा रही कांग्रेस की पूर्ण स्वराज की मांगों को पूरा नहीं कर सका। अधिनियम में वस्तुतः संकीर्ण तथा विभेदपूर्ण मताधिकार, सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व तथा लोकतंत्र विरोधी पद्धतियों का प्रस्ताव था। इस अधिनियम से लोगों को भारी मात्रा में निराशा हाथ लगी। ब्रिटिश सरकार ने अपनी ओर से 1909 के अधिनियम को लागू करने के बाद से ही दमन तथा प्रताड़न की नीति लागू करने का प्रयत्न किया।

प्रथम महायुद्ध (1914—18) से भारत तथा ब्रिटेन दोनों ही देशों में विशेष परिवर्तन आए। जर्मनी तथा उसके सहयोगी राष्ट्रों के खिलाफ लड़ने वाले अंग्रेज चाहते थे कि भारतीय इस युद्ध में उनकी मदद करें। भारत में भी वातावरण काफी बदल गया था। उदारवादी माडरेट तथा उग्रवादी संगठित हो गए थे। कांग्रेस और मुस्लिम लीग लखनऊ समझौते के माध्यम से एक-दूसरे के काफी निकट आ गए थे।

महायुद्ध के प्रभावों ने ब्रिटिश सरकार के लिए यह आवश्यक बना दिया कि वह भारत के लिए एक निश्चित नीति का निर्माण करे। परिणामस्वरूप अगस्त 1917 में मांटेग्यू घोषणा हुई, जिसमें भारतीयों को उत्तरदायी सरकार का आश्वासन दिया गया तथा स्वशासन के लिए संगठन बनाने की बात कही गई।

अतः 1919 का भारत शासन अधिनियम, जिसे मांटफोर्ड सुधार भी कहा गया, भारत में उत्तरदायी सरकार की स्थापना की ओर पहला कदम था। इस अधिनियम के मुख्य प्रावधान ये थे :

1. 1909 के अधिनियम द्वारा प्रस्तावित आंशिक उत्तरदायी सरकार के विषयों का विभाजन दो सूचियों में किये जाने का प्रस्ताव किया : केंद्र सूची में 47 विषय थे, जिसमें रक्षा विदेशी मामले, मुद्रा, संचार आदि। राज्य सूची में 51 विषय थे, जिसमें स्थानीय स्वशासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सफाई, शिक्षा आदि। केंद्र को केंद्र सूची तथा राज्यों को राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार था।

प्रांतीय विषयों को आरक्षित, तथा हस्तांतरित दो अन्य भागों में बांटा गया। 'आरक्षित' विषयों में वित्त, सिंचाई, यूरोपीय शिक्षा, कानून और व्यवस्था, भूमि सुधार आदि थे। ये विषय अंग्रेज कार्यकारी पार्षदों के नियंत्रण में थे, जोकि गवर्नर के प्रति प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी होते थे। हस्तांतरित विषयों में स्थानीय स्वायत्त शासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सफाई, शिक्षा आदि शामिल थे और इन पर मुख्यतः भारतीय मंत्रियों का नियंत्रण होता था जो कि प्रांतीय विधायी परिषदों के सदस्य होते थे। इन मंत्रालयों का प्रशासन मंत्रियों के सहयोग से गवर्नर द्वारा संचालित होता था।

2. 1919 के अधिनियम ब्रिटेन में एक उच्चायुक्त नियुक्त किए जाने का प्रावधान किया गया। उच्चायुक्त केंद्र और राज्य सरकारों के एजेंट के रूप में कार्य करता था तथा भारत के व्यापारिक हितों की देखभाल करता था।

3. मांटफोर्ड सुधारों ने केंद्रीय विधायिका की पुनर्संरचना की। केंद्रीय विधायिका में दो सदन होते थे : (1) राज्यों की परिषद तथा (2) विधान सभा। दोनों सदनों का प्रत्यक्ष निर्वाचन होता था। पृथक् निर्वाचक मंडल की प्रणाली पूर्ववत् बनी रही तथा इसमें और भी बढ़ोतरी की गई। दोनों सदनों का संगठन रेखाचित्र 2 में बतलाया गया है :

रेखाचित्र 2 : (1919 के मांटफोर्ड सुधारों के अनुसार केंद्रीय विधायिका की संरचना)

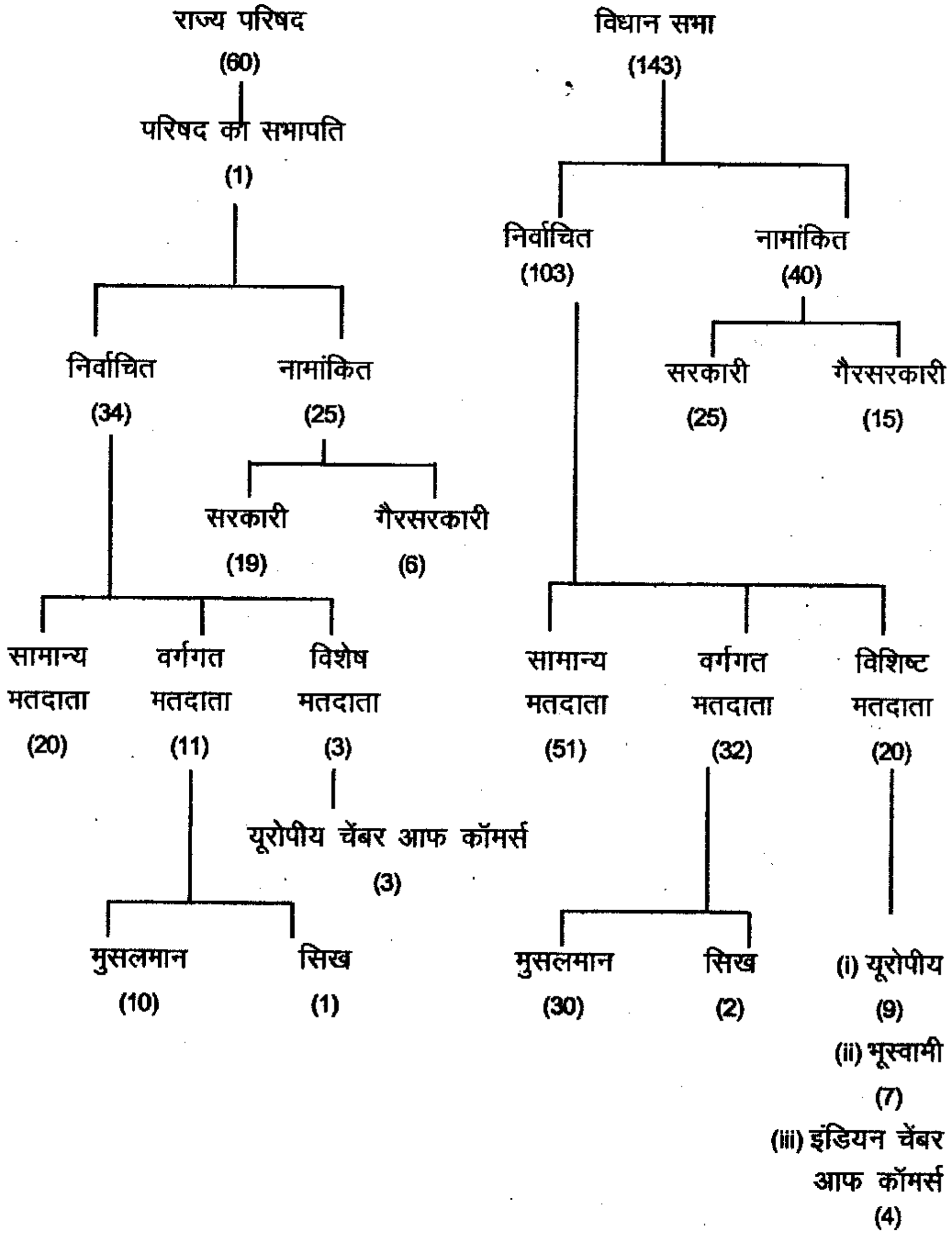

राज्यों की परिषद का कार्यकाल पांच वर्ष तथा विधानसभा का तीन वर्ष था। मताधिकार सीमित तथा विभेदपूर्ण ही रहा। राज्य परिषद के लिए मतदाताओं की संख्या 17,000 थी, जबकि विधानसभा के लिए यह 25 करोड़ की जनसंख्या में लगभग 10 लाख थी।

1919 के अधिनियम के अनुसार दोनों सदनों की शक्तियां समान थीं। सदस्यों को केंद्र सूची के विषयों पर विधेयक लाने और सरकार की आलोचना करने का अधिकार था। केंद्रीय बजट के बहुत बड़े भाग पर मतदान की अनुमति नहीं थी।

4. 1919 के अधिनियम के तहत गवर्नर जनरल के पास व्यापक शक्तियाँ थीं। उसके पास असीमित तथा अप्रतिबंधित शक्तियां थीं। उसका देश के नागरिक और सैनिक प्रशासन पर प्रत्यक्ष नियंत्रण था और वह उसका निरीक्षण, परीक्षण और निर्देशन कर सकता था। केंद्रीय कार्यपालिका की नियुक्ति में वह स्वतंत्र था। वस्तुतः वह देश में वास्तविक शासक शक्ति था। उसे बजट में कटौती करने तथा अध्यादेश जारी करने का भी अधिकार था।

5. केंद्रीय विधायिका एक सदनीय थी। प्रांतीय विधायिका के सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई तथा इसकी अधिकतम सदस्य संख्या 140 और न्यूनतम 60 रखी गई। आसाम एक अपवाद था जहां पर यह संख्या 53 थी। प्रत्येक प्रांतीय परिषद में अनुमानतः 70 प्रतिशत सदस्य निर्वाचित होते थे, 20 प्रतिशत नामांकित सरकारी सदस्य तथा 10 प्रतिशत नामांकित गैर-सरकारी सदस्य होते थे। यहां भी मताधिकार सीमित, संकीर्ण तथा विभेदकारी था। जनसंख्या का मात्र 2.8 प्रतिशत भाग ही मतदान का अधिकार रखता था। निर्वाचित सदस्यों के बीच सामान्य, सांप्रदायिक और विशेष निर्वाचन क्षेत्रों का प्रावधान था।

प्रांतीय विधायिकाओं की शक्तियों में वृद्धि करते हुए उन्हें प्रांतीय विषयों पर कानून बनाने, प्रांतीय बजट पर बहस करने तथा प्रश्न पूछने आदि का अधिकार दिया गया। गवर्नर के हाथ में विशिष्ट तथा विभेदपूर्ण शक्तियों के निहित होने से प्रांतीय विधायिकाएं कमजोर विधायी संस्थाएं मात्र बन गई थीं।

(6) 1919 के अधिनियम ने प्रांतीय गवर्नरों की स्थिति को काफी महत्वपूर्ण बना दिया था। उसमें वास्तविक शक्तियां निहित थीं। उसमें विवेकपूर्ण शक्तियां भी निहित थीं। वह अपने मंत्रियों और पार्षदों को प्रभावित कर सकता था तथा प्रांतीय विधायिकाओं पर भी नियंत्रण रखता था। प्रांतीय प्रशासन में उसकी स्थिति एक तानाशाह से कम नहीं थी।

(7) 1919 के भारत शासन अधिनियम की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता प्रांतों में प्रशासन की एक नई प्रणाली की शुरुआत थी। यह प्रणाली थी 'द्वैधतंत्र'। इसका तात्कालिक उद्देश्य भारतीयों के अधिकाधिक सहयोग से प्रशासन की कला में इन्हें प्रशिक्षण प्रदान करना था।

(द्वैधतंत्र उस संगठन का नाम है, जिसमें दो प्रकार के गवर्नरों का शासन चलता है, अर्थात प्रांत के लोगों पर पार्षदों और मंत्रियों का शासन)।

'द्वैधतंत्र' दो शब्दों के मेल से बना है 'दी' और 'आर्की' जिसका तात्पर्य है 'दोहरा शासन' अर्थात् प्रांत की जनता पर पार्षदों और मंत्रियों का दोहरा शासन। 1919 के अधिनियम के तहत प्रांतीय विषयों को 'आरक्षित' और 'हस्तांतरित' दो भागों में बांटा गया था। आरक्षित विषय परिषद में गवर्नर के पास आरक्षित होते थे जबकि हस्तांतरित विषय भारतीय मंत्रियों के पास हस्तांतरित

होते थे, परंतु इन पर मंत्रियों के माध्यम से गवर्नर का नियंत्रण रहता था। अतः प्रांतों में प्रशासन की पद्धति में सत्ता के दो केंद्र थे, एक परिषद में गवर्नर और दूसरा मंत्रियों के माध्यम से गवर्नर का शासन। एक पूर्णतः विदेशी और दूसरा पूर्णतः भारतीय अर्थात् देशी। एक आरक्षित विषयों का प्रभारी था तो दूसरा हस्तांतरित विषयों का; एक गवर्नर के प्रति उत्तरदायी था तो दूसरा प्रांतीय विधायिका के प्रति। एक प्रभुत्वशाली था तो दूसरा अधीनस्थ और इसी तंत्र को द्वैधतंत्र कहा जाता है।

दोहरी शासन प्रणाली, 'द्वैधतंत्र' अप्रैल 1921 में बंगाल, बिहार, आसाम, मद्रास, बंबई, पंजाब, संयुक्त प्रांतों तथा मध्य प्रांतों में लागू की गई, जबकि 1932 में इसे उत्तरपश्चिम सीमा प्रांतों तक विस्तृत किया गया और 1937 तक लागू रही। सुधार जांच समिति की अल्पसंख्यक रिपोर्ट में कहा गया है कि द्वैधतंत्र पहले तीन वर्षों तक तो ठीक चला, परंतु 1924 के बाद यह असंतोषजनक तथा अक्षम साबित हुई। इस नई प्रणाली में ऐसी कमियां थीं जिनके कारण प्रारंभ से ही इसकी कार्यकुशलता पर बुरा असर पड़ा। संक्षेप में, उन कमियों को इस प्रकार देखा जा सकता है :

(1) प्रांतीय शासन को दो भागों में बांटना कुशल प्रशासन के सिद्धांत के विपरीत था। वास्तव में प्रशासन को दो खंडों में बांटकर संचालित करना असंभव था। कोई भी सरकार एक जैविक इकाई की तरह होती है, जिसके अंगों को एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता।

(2) प्रांतीय विषयों को 'आरक्षित' तथा 'हस्तांतरित' दो भागों में बांटने का कोई तार्किक और वैज्ञानिक आधार नहीं था। कृषि एक हस्तांतरित विषय था, जबकि सिंचाई जोकि कृषि का ही अंग है, आरक्षित वर्ग में आती थी।

(3) द्वैध प्रणाली के अंतर्गत प्रांत में गवर्नर की स्थिति संवैधानिक प्रधान की होनी चाहिए थी, परंतु ऐसा नहीं था। गवर्नर वास्तविक शक्तियों का प्रयोग करता था। वह प्रांतीय विधायिका के किसी सदस्य को मंत्री के रूप में नियुक्त कर सकता था तथा किसी अन्य को पदच्युत भी कर सकता था। प्रांतीय विधायिका के प्रति मंत्रियों का उत्तरदायित्व मात्र औपचारिकता भर था। मंत्री गवर्नर के प्रसाद पर्यंत ही मंत्री पद पर रह सकते थे। स्पष्टतः गवर्नर की ऐसी स्थिति उस संसदीय प्रणाली के खिलाफ थी, जिसकी शुरुआत उन दिनों भारत में हो रही थी।

(4) विधायिका में 'आरक्षित' विषयों के संबंध में मंत्रियों की दशा अत्यंत दयनीय थी। नीतियों के निर्माण में न तो उनकी कोई खास भूमिका ही होती थी और न ही प्रांतीय प्रशासन से जुड़े महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर उनकी राय ही ली जाती थी। जिस विधायिका के प्रति उनकी जवाबदेही होती थी उसका विश्वास ही वे मुश्किल से जीत पाते थे। वस्तुतः प्रांतीय विधायिका के सदस्यों का बहुमत गवर्नर के साथ था। इस तरह की विधायिका में मंत्रीय उत्तरदायित्व की स्थिति मुश्किल से ही बन पाती थी।

(5) वित्त विभाग आरक्षित श्रेणी में था। इस विभाग के माध्यम से वित्त अन्य विभागों को भेजा जाता था। वित्त पार्षद हस्तांतरित विभागों पर भी अंकुश रखता था। उसका सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य यह देखना होता था कि आरक्षित विभागों को अपेक्षित आय का सारा

धन मिल चुका है या नहीं। हस्तांतरित विभागों पर बाद में ध्यान दिया जाता था। मंत्रियों की वित्तीय जरूरतों के विषय में वित्त मंत्री अनेक तकनीकी बाधाएं खड़ी करता था।

(6) अपने लोक सेवकों के विषय में मंत्रियों की स्थिति काफी दुःखद थी। अपने स्थायी अधिकारियों पर उनका कोई नियंत्रण नहीं था। वस्तुतः मंत्रियों के साथ काम करने वाले सिविल सेवक अपनी निष्ठा गवर्नर के प्रति रखते थे। किसी भी मंत्री को यह अधिकार नहीं था कि वह किसी लोक अधिकारी की नियुक्ति अथवा पदच्युति कर सके अथवा उसकी सेवा-शर्तें निर्धारित कर सके।

1919 की द्वैधप्रणाली की कमजोरियों के अतिरिक्त, मांटफोर्ड सुधारों में कुछ अन्य कमजोरियां भी थीं। गवर्नर जनरल में असीमित शक्तियां निहित करते हुए केंद्र सरकार तानाशाह हो गई थी। प्रांतों में आंशिक उत्तरदायी शासन का कोई भी लक्षण दिखाई नहीं पड़ता था, क्योंकि समस्त प्रशासनिक क्षेत्र पर गवर्नर का प्रभुत्व रहता था। प्रतिबंधित और विभेदकारी मताधिकार लोकतांत्रिक शासन के सभी सिद्धांतों के प्रतिकूल था। अन्य धार्मिक समुदायों को पृथक् निर्वाचक सुविधा का विस्तार न केवल राष्ट्रवादी आंदोलन के लिए हानिकारक था, अपितु इसने देश में सांप्रदायिक शक्तियों को पनपने का मौका भी दिया।

पाठगत प्रश्न 37.2

कोष्ठक में दिए गए शब्दों में से उपयुक्त शब्द छांटकर खाली स्थानों में भरो :

1. लखनऊ पैक्ट (समझौता) पर हस्ताक्षर हुआ ——————। (1914, 1915, 1916)
2. आंशिक उत्तरदायी सरकार को कहा गया ——————। (द्वैधतंत्र, प्रांतीय स्वायत्तता, स्वराज)
3. ——————1919 के भारत शासन अधिनियम में एक हस्तांतरित विषय था। (वित्त, कृषि, सिंचाई)
4. मांटफोर्ड सुधारों ने इंगलैंड में ——————का पद सृजित किया (राज्यसचिव, वायसराय, उच्चायुक्त)
5. 1919 के अधिनियम में राज्यों की परिषद में कुल सदस्य संख्या ————थी। (60, 140, 145)

37.5 भारत शासन अधिनियम 1935

1919 से 1935 के बीच का काल भारत में तीव्र राजनीतिक गतिविधि का काल था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का नेतृत्व सभालते हुए महात्मा गांधी ने असहयोग आंदोलन (1920-1922) तथा सविनय अवज्ञा आंदोलन (1930-1934) चलाया और इस प्रक्रिया में उन्होंने कांग्रेस को जनता का संगठन बनाकर उसे भारतीय समाज के प्रत्येक क्षेत्र में पहुंचाया। उनकी लड़ाई ब्रिटिश लोगों के खिलाफ थी अपितु सरकार की दमनात्मक नीतियों के खिलाफ थी। उन्होंने रोलेट एक्ट, जलियां वाला बाग हत्याकांड, नमक कानून तथा उन सभी बुराइयों के खिलाफ आवाज उठाई

जिन्हें ब्रिटिश शासन ने भारत में बढ़ावा दिया। वे सत्य की लड़ाई अहिंसा के रास्ते से लड़ रहे थे।

गांधीजी के आंदोलन के साथ-साथ स्वराज्यवादियों ने विधायिका का सदस्य बनकर अंदर से सरकार के खिलाफ लड़ाई लड़नी चाही। भगतसिंह तथा अनेक सहयोगी क्रांतिकारियों ने ब्रिटिश शासन को खत्म करने का प्रयास किया। अनुदारवादी ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त साइमन आयोग ने भारत के लिए नये विधान की शुरुआत करने की आवश्यकता बताई थी। 1930, 1931, 1932 में हुए तीन गोलमेज सम्मेलनों तथा भारत शासन अधिनियम 1935 द्वारा जारी श्वेत पत्र संभव हो सके।

1935 के भारत शासन अधिनियम के प्रमुख प्रावधानों को संक्षेप में इस प्रकार देखा जा सकता है :

(1) भारत शासन अधिनियम एक विस्तृत दस्वावेज है। इसमें 451 खंड तथा 15 अनुसूचियां हैं। इसमें प्रस्तावित परिसंघ, प्रांतीय स्वायत्तता, गवर्नर जनरल, गवर्नरों, प्रांतीय इकाइयों आदि की शक्तियों एवं प्रावधानों का विवरण है।

(2) प्रांतीय स्वायत्तता 1935 के भारत शासन अधिनियम की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। इसके तहत प्रांतीय सरकारों को एक नई संवैधानिक स्थिति प्राप्त हुई। द्वैधतंत्र समाप्त कर दिया गया तथा समस्त प्रांतीय प्रशासन को मंत्रियों के नियंत्रण में दे दिया गया जो कि संबंधित विधायिकाओं के प्रति उत्तरदायी थे। गवर्नरों से अपेक्षा की जाती थी कि वे सांविधनिक प्रमुख की भूमिका निभाएं।

(3) इस अधिनियम ने एक अखिल भारतीय परिसंघ को बनाने का प्रस्ताव किया, जिसमें ब्रिटिश भारतीय प्रांतों, छः मुख्य कमिश्नरी प्रांतों तथा ऐसी देशी रियासतों को शामिल किया जाना था, जो इसको स्वीकार करें।

(4) इस अधिनियम ने केंद्र में एक द्वैध शासन प्रणाली की शुरुआत की। केंद्रीय विषयों को 'आरक्षित' तथा 'हस्तांतरित' दो भागों में बांटा गया था। आरक्षित विषयों में रक्षा, विदेशी मामले तथा विदेश संबंध और जनजातीय क्षेत्रों का प्रशासन शामिल था। इनका प्रशासन गवर्नर जनरल द्वारा विवेक तथा अपने मंत्रियों के माध्यम से संचालित होता था। शेष विषय हस्तांतरित श्रेणी में शामिल थे तथा इनका प्रशासन केंद्रीय विधायिका से लिए गए मंत्रियों की सहायता से गवर्नर जनरल करता था। ये मंत्री इसी के प्रति उत्तरदायी थे।

(5) 1935 के अधिनियम ने 'सुरक्षा' तथा 'सीमा आरक्षण', का भी प्रबंध किया है। ये नियंत्रण और सीमाएं विधायी संस्थाओं की शक्तियों और कार्यों पर लगी हुई थीं।

(1935 के एक्ट के तहत प्रस्तावित सुरक्षा और विशेषाधिकार गवर्नर जनरल को प्राप्त अधिकार थे, जोकि विधायी संस्थाओं की शक्तियों को सीमित कर सकता था।)

(6) 1935 के भारत शासन अधिनियम में एक उच्च्य सदन बनाने की सिफारिश की, जिसे राज्यों की परिषद कहा गया और जिसमें 260 सदस्य होने थे। निम्न सदन में सदस्यों की संख्या 375 थी। ब्रिटिश भारत के 12 प्रांतों में से 6 में दो सदनीय विधानमंडल लागू किया गया। विधायी इकाइयों का आकार भी बढ़ा दिया गया। यद्यपि पृथक् निर्वाचन मंडल की प्रणाली

को बनाए रखा गया और इसमें वृद्धि भी की गई, फिर भी 10 प्रतिशत से अधिक लोगों को मताधिकार मिला।

(7) इस अधिनियम ने शक्तियों का विभाजन भी प्रस्तावित किया। तीन सूचियां बनीं : केंद्र सूची में 59 विषय राज्यसूची में 54 विषय तथा 35 विषयों वाली एक समवर्ती सूची भी बनीं। संघ सूची के विषयों में रक्षा, मुद्रा, डाक और तार, रेलवे, केंद्रीय सेवाएं तथा अन्य थे और इन पर केंद्रीय विधायिका कानून बना सकती थी। प्रांतीय विषयों में शिक्षा, भूराजस्व, स्थानीय स्वायत्त शासन, कानून और व्यवस्था, सार्वजनिक स्वास्थ्य आदि थे और इन पर प्रांतीय सरकारें कानून बनाने का अधिकार रखती थीं। समवर्ती सूची में आपराधिक कानून प्रक्रिया, सिविल प्रक्रिया, विवाह, तलाक आदि विषय थे और इन पर केंद्र और राज्य विधायिकाएं दोनों कानून बना सकती थीं। विवाद की स्थिति में संघीय कानून इन पर प्रभावी होता था।

(8) इस अधिनियम ने एक संघीय न्यायालय बनाने का प्रस्ताव किया, जिसमें एक मुख्य न्यायाधीश तथा 6 से अधिक अन्य न्यायाधीश होते थे। जजों की नियुक्ति क्राउन (सम्राट) के द्वारा की जाती थी और वे 65 वर्ष की उम्र तक अपने पद पर बने रहते थे। संघ न्यायालय को मौलिक, अपीलीय तथा सलाहकारी न्यायिक अधिकार प्राप्त थे। पर यह अंतिम या सर्वोच्च न्यायालय नहीं था। इस न्यायालय के निर्णयों के खिलाफ अपील प्रिवी कौंसिल में की जा सकती थी।

(9) 1935 के अधिनियम में इंडिया कौंसिल का उन्मूलन कर दिया। इसमें भारत के मामलों में ब्रिटिश संसद की सर्वोच्चता स्थापित की गई। केंद्रीय तथा प्रांतीय विधान सभाएं केवल सलाह और सुझाव दे सकती थीं परंतु भारत पर अंतिम निर्णय लेने की शक्ति ब्रिटिश संसद के पास थी।

1935 के इस अधिनियम की प्रायः सभी राजनीतिक दलों ने आलोचना की। मुहम्मद अली जिन्ना ने इसे अत्यंत घातक, मूलतः त्रुटिपूर्ण तथा पूरी तरह अस्वीकार्य कहा। नेहरू ने भी कहा कि "अंग्रेजों ने हमें एक मजबूत ब्रेकोंवाली मशीन दे दी है, जिसमें इंजन नहीं है।" इस अधिनियम की कुछ कमियां इस प्रकार हैं :

1. प्रस्तावित परिसंघ विशिष्टताओं से परिपूर्ण था। परंतु यह कभी अस्तित्व में नहीं आया। कुछ संघीय विशेषताओं का औपचारिक समावेश, जैसे कि लिखित संविधान,शक्तियों का विभाजन तथा संघीय न्यायालय, परिसंघ के अस्तित्व को मुश्किल से ही सुनिश्चित कर सकता था। प्रस्तावित परिसंघ असमान इकाइयों का एक संघ था। इसके पास ऐसी विधायिका थी जिसके पास संशोधन का अधिकार नहीं था। इसके उच्च सदन में संघीय इकाइयों का प्रतिनिधित्व नहीं था।

2. प्रांतीय स्वायत्तता अधिनियम के तहत प्रस्तावित, मात्र कागज पर प्राप्त स्वायत्तता थी। तानाशाह गवर्नर तथा "संरक्षण और आरक्षण" की शक्तियों से लैस गवर्नर जनरल के होते हुए प्रांतों की स्वायत्तता का संरक्षण मुश्किल था। वैसे मंत्रियों को अपने मंत्रालयों का स्वतंत्र प्रभार प्राप्त था किंतु वे स्वतंत्रता पूर्वक कार्य नहीं कर सकते थे। स्थायी लोक सेवक मंत्रियों के प्रति वफादार नहीं थे: और गैर वफादार अधिकारियों के बिना मंत्री प्रभावपूर्ण ढंग से कार्य नहीं कर पाते थे। प्रांतीय स्वायत्तता केवल एक मिथ्या साबित हुई।

3. 'सुरक्षा और आरक्षण' के प्रावधान विदेशियों के लाभ के लिए देशी लोगों में भय पैदा करने के उपाय थे। ये वस्तुतः भारतीय घरों को विभाजित करने की चालें थीं, जोकि विधायिकाओं की कार्य प्रणाली पर नियंत्रण लगाती थीं।

4. 1935 के अधिनियम के तहत कार्यपालिका को व्यवस्थापिका से अधिक शक्तिशाली बना दिया गया। जब भी ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई तो एक तानाशाही प्रवृत्ति देखने को मिली। गवर्नर जनरल सुरक्षा और आरक्षण के प्रावधानों के सहारे संघीय विधायिका की शक्ति का उल्लंघन करता था। गवर्नर प्रांतीय विधायिकाओं की शक्ति पर सर्वोच्चता अपने ऊपर आरोपित 'विशेष उत्तरदायित्व' के नाम पर प्राप्त कर लेता था। 1935 के अधिनियम की मूल बात उत्तरदायी सरकार नहीं थी, अपितु लोकतांत्रिक स्वरुप में तानाशाही थी।

5. कमजोर विधायी संस्थाएं, प्रतिबंधित तथा विभेदपूर्ण मताधिकार और सांप्रदायिकता पूर्ण पद्धति 1935 के अधिनियम की अन्य कमजोरियां थी।

पाठगत प्रश्न 37.3

कोष्ठक में दिए गए शब्दों में से सही शब्द चुनकर खाली स्थान भरिए:

1. प्रांतीय स्वायत्तता का प्रावधान अधिनियम---------के तहत किया गया।
(1909, 1919, 1935)

2. 1935 के भारत शासन अधिनियम के तहत -------------एक 'आरक्षित' विषय था।
(रक्षा मामले, मुद्रा, वित्त)

3. समवर्ती सूची में संघीय विधायिका तथा ----------शामिल थी ।
(गवर्नर, प्रांतीय सरकार, गवर्नर जनरल)

4. 1935 के अधिनियम के तहत संघीय न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश तथा --------अन्य जज थे।
(पांच, छः, सात)

5. 1935 के अधिनियम में उपबंधों (खंडों) की संख्या थी ---------- (1451, 452, 453)

37.6 परिसंघ तथा प्रांतीय स्वायत्तता

भारत शासन अधिनियम, 1935 की दो प्रमुख बातें थीं, परिसंघ और प्रांतीय स्वायत्तता।

अखिल भारतीय परिसंघ, 1935 के अधिनियम के तहत प्रस्तावित तीन प्रकार की संघीय इकाइयों से मिलकर बना था (1) ब्रिटिश भारतीय प्रांत, (2) चीफ कमिश्नर प्रांत - 6 तथा (3) देशी रियासतें जो कि इसमें शामिल होने को राजी थीं। ब्रिटिश भारतीय इकाइयों के लिए परिसंघ में शामिल होना अनिवार्य था, जबकि भारतीय देशी रियासतों के लिए यह स्वैच्छिक था।

इस अधिनियम के तहत प्रस्तावित अखिल भारतीय परिसंघ की योजना में परिसंघ की कुछ विशेषताएं विद्यमान थीं। लिखित संविधान, केंद्र और राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन तथा एक संघीय न्यायालय का प्रावधान था। परंतु अभी भी 1935 का प्रस्तावित परिसंघ वास्तविक

परिसंघ से बहुत दूर था। दरअसल इस अधिनियम द्वारा प्रस्तावित परिसंघ में कुछ ऐसी बातें थीं जो किसी परिसंघ में नहीं पाई जातीं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं :

1. परिसंघीय इकाइयों में अनेक असमानताएं थीं। ब्रिटिश भारतीय इकाइयों पर लोकतांत्रिक मूल्यों पर काम होता था। जबकि देशी राज्यों में तानाशाही का शासन था देशी राज्यों में निर्वाचित संस्थाएं नहीं थीं और उनके पास नागरिक अथवा राजनीतिक अधिकार भी नहीं थे।

2. प्रस्तावित परिसंघ अनोखा था क्योंकि ब्रिटिश प्रांतों के पास इसमें शामिल होने के अलावा कोई विकल्प न था, जबकि निजी देशी राजाओं को छूट थी कि वे चाहें तो शामिल हों अथवा बाहर रहें। इसमें इकाइयों को यह भी अधिकार था कि वे चाहे जितनी शक्तियां केंद्र सरकार को हस्तांतरित कर सकें।

3. संघीय विधायिका में परिसंघीय इकाइयों के लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्व का प्रावधान नहीं था। राज्यों की परिषद में प्रांतीय रियासतों का प्रतिनिधित्व कुल सीटों का 40 प्रतिशत तथा विधानसभाओं में लगभग 30 प्रतिशत था, जबकि इनकी जनसख्या ब्रिटिश भारत की जनसख्या की मात्र एक चौथाई ही थी।

4. इस अधिनियम की एक अन्य विशषेता संघीय विधायिका में प्रतिनिधित्व की पद्धति थी। ब्रिटिश भारत के लिए चुनाव की पद्धति आनुपातिक प्रतिनिधित्व थी, जबकि प्रांतीय राज्यों के लिए यह प्रतिनिधित्व नामांकन पद्धति पर आधारित था।

5. किसी भी परिसंघ में देश के संविधान संशोधन की शक्ति संघीय विधायिका में निहित होती है। भारत के मामले में संघ और प्रांतीय विधानमंडलों को संविधान संशोधन में भागीदार नहीं बनाया गया था। 1935 के अधिनियम के तहत संविधान संशोधन ब्रिटिश संसद करती थी।

यह ठीक कहा गया है कि 1935 के अधिनियम के तहत प्रस्तावित परिसंघ एक त्रुटिपूर्ण परिसंघ था। इन्हीं विशेषताओं के परिणाम स्वरूप इसका कड़ा विरोध हुआ। फलतः यह परिसंघ कभी अस्तित्व में नहीं आया। यह माना गया कि इस अधिनियम के तहत संघीय संरचना अप्राकृतिक, बनावटी तथा किसी भी संविधान के लिए अपरिचित थी।

प्रांतीय स्वायत्तता 1935 के अधिनियम की एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता थी। प्रांतों के प्रशासन के संबंध में यह अधिनियम अपने पूर्व के सभी अधिनियमों से आगे निकल जाता है। इसने शक्तियों का विक्रेंद्रीकरण प्रस्तावित करके प्रांतों को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया। इसने प्रांतों के प्रशासनिक तंत्र का गठन किया, प्रांतीय सरकारों के दोहरे चरित्र को समाप्त किया। आरक्षण तथा सुरक्षा के प्रावधानों को समाप्त किया और प्रांतों को स्वायत्त राजनीतिक इकाई बनाया। इसने प्रांतों को नियंत्रण के निश्चित क्षेत्र प्रदान किए तथा प्रांतीय सूची में समाविष्ट विषयों पर कानून बनाने का आत्यंतिक अधिकार दिया।

प्रांतीय स्वायत्तता प्रांतीय प्रशासन की एक प्रणाली है, जो कि कुछ निश्चित क्षेत्रों में प्रांतीय सत्ता को पूर्ण नियंत्रण तथा अधिकार देती है तथा प्रांतों पर क्रेंद्रीय नियंत्रण कम करती है।

1935 के अधिनियम के तहत प्रस्तावित प्रांतीय स्वायत्तता की महत्त्वपूर्ण बातें निम्नलिखित हैं :

1. प्रांतों की अपनी स्वतंत्र संवैधानिक स्थिति थी।
2. वे अपनी प्रशासनिक, विधायी, तथा वित्तीय शक्तियां ब्रिटिश संसद के कानूनों से प्राप्त करते थे।
3. प्रांतीय विषयों पर कानून बनाने का वे आत्यंतिक अधिकार रखती थीं।
4. प्रांतीय अधिकार क्षेत्र में आने वाले विषयों के मामलों में संघ सरकार के अधिकार को सीमित किया गया।
5. प्रांतों का प्रशासन गवर्नर द्वारा मंत्रियों के माध्यम से होता था, जोकि अपनी संबंधित विधायिकाओं के प्रति उत्तरदायी होते थे।

अक्तूबर 1937 में 11 ब्रिटिश भारतीय प्रांतों में प्रस्तावित प्रांतीय स्वायत्तता विभिन्न समयों में विभिन्न प्रांतों में अस्तित्व में रही। सिंध, बंगाल, पंजाब में 10 वर्ष तक यह कायम रही। बंबई, मद्रास, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रांत तथा उत्तर-पश्चिम सीमा-प्रांतों में यह बहुत अल्पकाल तक रही। 1937 से 1939 तक प्रारंभ में और फिर द्वितीय महायुद्ध के बाद आसाम और उड़ीसा में यह 1937 से 1939 के बीच मात्र दो माह तक कायम रही।

प्रांतीय स्वायत्तता की कार्यप्रणाली से स्पष्ट है कि यह वास्तविकता से बहुत दूर थी। यह एक कल्पना से अधिक कुछ नहीं थी। ऐसा इसलिए था क्योंकि इसकी अपनी कमजोरियां थीं। इसकी कार्यप्रणाली से पता चलता है कि इसने अपना अपेक्षित समर्थन नहीं प्राप्त किया। प्रांतीय स्वायत्तता में दो बातें हैं : बाहरी नियंत्रण से स्वतंत्रता तथा प्रांत के अंदर पूर्ण स्वायत्तता। ये दोनों 1935 के अधिनियम में पूर्णतः नहीं थीं। जब यह अस्तित्व में आयी तो प्रांतीय प्रशासन न तो केंद्र के नियंत्रण से मुक्त था और न ही यह अंदर से स्वायत्त थी।

जहां तक बाह्य नियंत्रण की बात है, गवर्नर जनरल विशेष उत्तरदायित्वों के बहाने प्रांतीय मामलों में दखल दे सकता था। जो उसे करना था वह यह था कि ये प्रांतीय कार्य गवर्नर के उत्तरदायित्व का उल्लंघन करते थे। प्रांतीय विधायन के मामलों में भी गवर्नर जनरल प्रांतीय विधेयकों को सम्राट के अनुमोदन के लिए रख सकता था। कुछ विधेयक गवर्नर जनरल की पूर्व अनुमति के बिना प्रांतीय विधायिका में प्रस्तावित नहीं किए जा सकते थे। प्रांतीय गवर्नर द्वारा अपने विवेक से किए गए सभी फैसले गवर्नर जनरल के नियंत्रण में आते थे।

आंतरिक स्वायत्तता के संबंध में प्रांतीय सरकारें, जोकि उत्तरदायी मंत्रियों के द्वारा संचालित होती थीं, तानाशाही प्रांतीय गवर्नरों के आगे स्वायत्त नहीं रह गई थीं। गवर्नर जोकि प्रांतीय स्वायत्तता के तहत संवैधानिक प्रधान के रूप में काम करने के लिए था, वास्तविक रूप में प्रांतीय मामलों को निर्देशित तथा प्रभावित करता था। वह प्रांतीय विधायिका पर पूरा नियंत्रण रखता था, कार्यपालिका तो उसकी इच्छा पर बनाई जाती थीं। वह किसी मंत्री को नियुक्त तथा पदमुक्त कर सकता था। स्थायी सिविल पर उसका पूरा नियंत्रण था तथा उनके माध्यम से वह प्रांतीय प्रशासन पर पूरा नियंत्रण रखता था।

अतः प्रांतीय स्वायत्तता प्रांतों की स्वायत्तता नहीं थी। उत्तरदायी प्रांतीय प्रशासन को अंदर से गवर्नर तथा बाहर से गवर्नर जनरल द्वारा दबा दिया गया था।

पाठगत प्रश्न 37.4

कोष्ठक में दिये गये शब्दों में से उपयुक्त शब्द चुनकर खाली स्थान भरें।

1. 1935 के अधिनियम के द्वारा प्रस्तावित परिसंघ में शामिल होने वाले ब्रिटिश भारतीय प्रांतों की संख्या थी ———। (6, 11, 16)

2. 1935 के अधिनियम के तहत ——— को संविधान में संशोधन का अधिकार था। (केंद्रीय विधायिका, ब्रिटिश संसद, प्रांतीय विधायिकायें)

3. प्रांतीय स्वायत्तता का अर्थ दो बातों से था : बाहय नियंत्रण से स्वतंत्रता और ——— ———। (गवर्नर से स्वतंत्रता, आंतरिक स्वायत्तता)

4. ——— में 10 साल तक प्रांतीय स्वायत्तता थी। (बंगाल, बिहार, बंबई)

5. 1935 के अधिनियम के तहत——— को विशेष उत्तरदायित्व सौंपा गया। (गवर्नर, मुख्यमंत्री, मंत्री)

37.7. भारतीय स्वाधीनता अधिनियम, 1947

भारत शासन अधिनियम, 1935 को अप्रैल 1937 में लागू किया गया। हालांकि इसके कुछ उपबंध बाद में लागू हुए (अर्थात प्रांतीय स्वायत्तता अक्तूबर 1937 में लागू हुई)। जैसे ही सितंबर 1939 में द्वितीय महायुद्ध शुरू हुआ और गवर्नर जनरल ने भारत को एक युद्धरत देश घोषित किया। वैसे ही 1935 के अधिनियम की भावना तिरोहित हो गई। इसके बाद ब्रिटिश सरकार तथा भारतीयों के मध्य क्रिया-प्रतिक्रिया शुरू हुई। ब्रिटिश सरकार इस युद्ध में भारतीयों की मदद चाहती थी, जबकि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के माध्यम से युद्ध के दौरान राष्ट्रीय सरकार तथा युद्ध के बाद स्वाधीनता चाहते थे। 1940 में आल इंडिया मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान प्रस्ताव पास किया। 1939 से 1945 के दौरान अगस्त प्रस्ताव 1940 तथा क्रिप्स मिशन 1942 विफल हो गए। 'भारत छोड़ो आंदोलन' (1942) तथा आई. एन. ए. मुकदमों ने अंग्रेजों को निकालने के लिए नया उत्साह पैदा किया। द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के बाद में 1945 ब्रिटेन में लेबर सरकार ने सत्ता संभाला, 1946 में कैबिनेट मिशन भारत आया और उसके प्रस्तावों को भारतीय समाज के सभी वर्गों ने स्वीकार कर लिया।

कैबिनेट मिशन की योजनानुसार अंतरिम सरकार का गठन हुआ और संविधान सभा का चुनाव हुआ। मुस्लिम लीग को संविधान सभा में कम सीटें मिलने की वजह से उसका पाकिस्तान प्रस्ताव का मसला कमजोर होने पर उसने प्रत्यक्ष कार्रवाई अर्थात सांप्रदायिक दंगों का सहारा लिया। नागरिक युद्ध (गृहयुद्ध) से देश को बचाने के लिए विभाजन को स्वीकार कर लिया गया। माउंटबेटन योजना पर आधारित भारतीय स्वाधीनता अधिनियम 1947 ने न केवल स्वाधीनता प्रदान की, अपितु भारत और पाकिस्तान दो अधिराज्यों में देश का विभाजन भी किया।

1947 के भारत शासन अधिनियम की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं :

1. भारतीय स्वाधीनता अधिनियम, 1947 ने 15 अगस्त 1947 को भारत और पाकिस्तान दो अधिराज्यों के सृजन का प्रस्ताव किया।

2. ब्रिटिश संसद तथा ब्रिटिश भारत में अब तक निहित समस्त शक्तियाँ भारत और पाकिस्तान को हस्तांतरित कर दी गईं।
3. दोनों अधिराज्यों के भूमाग परिभाषित थे, जिसके लिए जनमत संग्रह तथा विधायिका में मतदान का भी प्रावधान था।
4. प्रत्येक अधिराज्य का अपना एक गवर्नर जनरल होना था।
5. दोनों अधिराज्यों की संविधान सभाएं संविधान निर्मात्री सभा तथा संसद दोनों रूपों में कार्य करती थीं, तब तक जब तक कि संविधान न बन जाय और नई विधायिका का गठन न हो जाय।
6. सत्ता के हस्तांतरण के साथ ही ब्रिटिश शासन की संप्रभुता समाप्त हो जानी थी। देशी राज्यों को अधिकार था कि वे चाहें तो भारत में विलय करें या पाकिस्तान में, अथवा स्वतंत्र रहें।

पाठगत प्रश्न 37.5

कोष्ठक में दिए गए शब्दों में से उपयुक्त शब्द छांटकर खाली स्थान भरिए।

1. 1940 में मुस्लिम लीग द्वारा पास प्रस्ताव था ——————।
   (भारत छोड़ो, पाकिस्तान, पूर्ण स्वराज)
2. कैबिनेट मिशन प्रस्ताव प्रस्तुत हुआ————————में। (1945,1946,1947)
3. भारतीय स्वाधीनता अधिनियम, 1947 आधारित था——————पर।
   (वेवेल योजना, क्रिप्स मिशन योजना, माउंटबेटन योजना)
4. 1947 का अधिनियम विभाजित था——————अधिराज्यों में। (दो, तीन, चार)
5. देश के विभाजन को ——————पर वरीयता दी गई।
   (गृहयुद्ध, परिसंघ, ब्रिटिश की पुनर्पराधीनता)

आपने क्या सीखा

ब्रिटिश सरकार ने 1858 में ईस्ट इंडिया कंपनी के क्षेत्रों का प्रशासन अपने हाथ में लेने के बाद अधिनियमों को पास करने का एक सिलसिला चलाया। इन अधिनियमों में प्रमुख थे 1861,1892,1909,1919,1935, तथा 1947 के अधिनियम। 1909 के मार्ले-मिंटो सुधारों ने पृथक निर्वाचकों की विभाजक नीति प्रस्तावित की, जिसने 1947 में भारत के विभाजन को जन्म दिया। 1919 के मांट-फोर्ड सुधारों ने प्रांतों में द्वैध प्रणाली लागू की, जोकि अव्यावहारिक सिद्ध हुई। 1935 का अधिनियम भी दोषपूर्ण सिद्ध हुआ क्योंकि इसने एक ऐसा परिसंघ प्रस्तावित किया, जोकि अपनी भावना में कभी अस्तित्व में नहीं आया। यह एक्ट प्रांतीय स्वायत्तता के मुद्दे पर भी दोषपूर्ण था। क्योंकि यह एक मिथ्या कल्पना सिद्ध हुई। एक लंबे स्वाधीनता संघर्ष के माध्यम से भारतीय लोग 1947 में ब्रिटिश पराधीनता से मुक्त हो पाने में सक्षम तो हुए किंतु वह स्वाधीनता देश के दो भागों में विभाजन के रूप में मिली। भारत और पाकिस्तान।

पाठांत प्रश्न

1. सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व के विशेष संदर्भ में 1909 के भारतीय परिषद अधिनियम के प्रावधानों की संक्षेप में चर्चा कीजिए।
2. भारत शासन अधिनियम, 1919 की प्रमुख विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
3. द्वैधतंत्र क्या है? इसमें निहित कमजोरियों को रेखांकित कीजिए।
4. 1935 के भारत शासन अधिनियम की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।
5. 1935 के अधिनियम में प्रस्तावित 'अखिल भारतीय परिसंघ' अथवा 'प्रांतीय स्वायत्तता' पर संक्षेप में निबंध लिखिए।
6. भारतीय स्वाधीनता अधिनियम, 1947 की महत्त्वपूर्ण विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

37.1

1. सुधार
2. 1906
3. आगा खां
4. 60
5. 1909

37.2

1. 1916
2. द्वैधतंत्र
3. कृषि
4. उच्चायुक्त
5. 60

37.3

1. 1935
2. पुरोहिताई (पादरी की) शक्तियां
3. प्रांतीय सरकार
4. छह
5. 451

37.4

1. 11
2. ब्रिटिश संसद
3. स्वायत्तता पहले
4. बंगाल
5. गवर्नर्स

37.5

1. पाकिस्तान
2. 1946
3. माउंटबेटन
4. दो अधिराज्य
5. नागरिक युद्ध (गृहयुद्ध)

पाठांत प्रश्नों के संकेत

कृपया इन प्रश्नों के लिए निम्न खंडों का अवलोकन करें:

1. देखिये भाग 3:3
2. देखिये भाग 3:4
3. देखिये भाग 3:4
4. देखिये भाग 3:5
5. देखिये भाग 3:6
6. देखिये भाग 3:7